International Journal of Applied Research 2015; 1(6): 237-238

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(6): 237-238
www.allresearchjournal.com
Received: 26-03-2015
Accepted: 29-04-2015

संदीप कुमार
शोध छात्र संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

Correspondence:
संदीप कुमार
शोध छात्र संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

पौनरुक्त्य दोष : महिमभट्ट की दृष्टि में

संदीप कुमार

काव्यशास्त्र की परम्परा में सर्वप्रथम भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को स्थान दिया जाता है। नाट्यशास्त्र यद्यपि मुख्यतः नाट्यसम्बन्धी तत्त्वों का विवेचन करता है, परन्तु इस विश्वकोश में काव्य के भी सभी तत्त्व मूलरूप में उपलब्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार काव्यदोषों के विषय में आचार्य भरत कहते हैं, कि दोष गुणों के विपर्ययरूप हैं।[1]
आचार्य भरत 10 काव्यदोषों का वर्णन करते हैं। यही परम्परा आचार्य महिमभट्ट तक आने से पूर्व आचार्य भोज तक 48 दोषों को मान लेती है। आचार्य महिमभट्ट ने ध्वनि के विरोध में अपना ग्रन्थ लिखा और उसमें भी दोष के अपाकरण हेतु दोषों का विशद विवेचन किया। महिमभट्ट से पूर्व के आचार्यों ने पौनरुक्त्य को 'एकार्थ' दोष के रूप में विवेचित किया। महिमभट्ट ने इसे 'पौनरुक्त्य' कहकर नवीन शैली से इसका विवेचन किया है।
पूर्वाचार्यों ने 'एकार्थ' को शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध से दो प्रकार का माना है। इसका खण्डन करते हुए महिमभट्ट कहते हैं कि 'पुनरुक्त' केवल अर्थ से सम्बन्धित एक ही प्रकार का होता है, क्योंकि यदि अर्थ भेद हो तो शब्द की पुनरुक्ति दोष नहीं होती।[2] यथा–

'हसति हसति स्वामिन्युच्चैरुदत्यपि रोदिति।
द्रविणकणिकाक्रीतं यन्त्रं प्रनृत्यति नृत्यति।'

अर्थात् 'स्वामी के हँसने पर हँसता है, रोने पर जोर से रोता है तथा नाचने पर नाचता है, क्योंकि वह धन से खरीदा गया यन्त्र ही है।' प्रकृत उदाहरण में प्राप्त 'हसति'–'हसति' इत्यादि रूपों में से एक क्रियापद तथा द्वितीय शतृ प्रतययान्त सप्तमी विभक्ति का रूप होने से यहाँ 'पुनरुक्त' दोष नहीं होता।
यदि अर्थ अभिन्न हो जाए, तो दोष 'पुनरुक्त' दोष ही होता है। परन्तु यदि तात्पर्य में भेद हो तो पुनरुक्त गुण बन जाता है, दोष नहीं रहता। यथा–

'वस्त्रायन्ते नदीनां सितकुसुमधराः शक्रसङ्काश! काशाः
काशाभा भान्ति तासां नवपुलिनगताः श्रीनदीहंस! हंसाः।
हंसाभोऽम्भोदमुक्तस्फुरदमलवपुर्मेदिनीचन्द्र! चन्द्र–
श्चन्द्राभः शारदस्ते जयकृदुपगतो विद्विषां काल! कालः।।'

अर्थात् 'हे इन्द्रसंकाश (इन्द्रतुल्य)! सफेद फूल धारण किए हुए काश नदियों के वस्त्र बन रहे हैं। हे लक्ष्मीरूपी नदी के हंस! नदियों की बालू पर बैठे हंस काश के समान प्रतीत हो रहे हैं। हे पृथ्वीचन्द्र! चन्द्रमा मेघावरण धुला हुआ निर्मल हो गया है तथा हंस की आभा को धारण कर रहा है। हे शत्रुओं के काल! तुम्हें विजय देने वाला शरद् ऋतु का यह चन्द्र के समान उज्ज्वल एवं चन्द्र की आभा को धारण करने वाला काल (समय) आ गया है।' प्रकृत श्लोक में पुनरावृत्त हुए शब्दों का तात्पर्य भिन्न होने से यहाँ चारुत्व की वृद्धि हुई है। अतः यहाँ पुनरुक्ति दोष न होकर, गुण है।
जहाँ अर्थ तथा तात्पर्य दोनों का अभाव हो वहाँ तो पुनरुक्ति दोष ही है। यथा–

'जक्षुर्बिसान्धृतविकासिबिसप्रसूना'।

प्रकृत उदाहरण में प्राप्त द्वितीय 'बिस' शब्द सर्वनाम द्वारा परामृश्य है। अतः यहाँ इसका जो स्वशब्द से कथन किया गया है, वह पुनरुक्त दोष है।[3]

पौनरुक्त्य के भेदों के विषय में विचार करते हुए महिम कहते हैं कि प्रकृति, प्रत्यय, प्रकृति–प्रत्यय, पद तथा वाक्य विषय होने से वह पौनरुक्त्य अनेक प्रकार का हो सकता है।[4] इन पर संक्षेप में क्रमशः विचार करते हैं।

प्रकृतिपौनरुक्त्य

जहाँ प्रकृति अर्थात् संज्ञा या धातु का व्यर्थ प्रयोग हो, वह 'प्रकृतिपौनरुक्त्य' कहलाता है। यथा–

'अश्वीयसंहतिभिरुद्धतमुद्धुराभिर्भूणुजालमखिलं वियदाततान।'

अर्थात् 'प्रयाण के लिए उद्यत अश्व समूह द्वारा उड़ाई गई धूल से आकाश भर गया है।' प्रकृत उदाहरण में प्राप्त 'अश्वीय' तथा 'संहति' दोनों पुनरुक्त हैं। 'अश्वीय' में समूहवाची 'छ' प्रत्यय हुआ है।[5] संहति से बहुवचनान्त 'भिस्' प्रत्यय किया गया है। 'संहति' के कथन से ही बहुवचनत्व का बोध होने से 'बहुवचन' निरर्थक हो जाता है तथा 'अश्वीय' कह देने से 'संहति' भी निरर्थक सिद्ध हो जाता है। अतः केवल 'अश्वैः' यही पाठ रखना चाहिए।[6] इस प्रकार यहाँ 'प्रकृतिपौनरुक्त्य' है।

प्रत्ययपौनरुक्त्य

'प्रत्ययपौनरुक्त्य' का उदाहरण है– 'बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः।' प्रकृत उदाहरण में प्राप्त 'पाथेयवन्तः' शब्द में जो मत्वर्थीय प्रत्यय किया गया है, वह दोषयुक्त है। क्योंकि यहाँ बहुव्रीहि समास से भी इष्टार्थप्रतीतिसम्भव है तथा नियम यह है कि– कर्मधारय एवं मत्वर्थीय में से लघु होने के कारण बहुव्रीहि ही श्रेष्ठ है। अतः यहाँ 'बिसकिसलयच्छेदपाथेयाः' यह प्रयोग करना चाहिए।

इसी प्रकार पदादि विषयक अन्य भेदों का भी उदाहरण सहित वर्णन व्यक्तिविवेक में उपलब्ध होता है। विशेषण तथा विशेष्य विषयक पुनरुक्त का चिन्तन करते हुए महिमभट्ट कहते हैं कि जहाँ विशेषण से विशेष्यमात्र की प्रतीति अभीष्ट हो वहाँ 'विशेष्य' का कथन करने से 'पौनरुक्त्य' दोष होता है।[7] यथा–

'चकासतं चारुचमूरुचर्मण कुथेन नागेन्द्रमिवेन्द्रवाहनम्।'

प्रकृत उदाहरण की समीक्षा करते हुए टीकाकार का कहना है कि 'इन्द्रवाहन' शब्द के प्रयोग में 'कुथ' शब्द के आधार पर 'नागेन्द्र' की प्रतीति होने से तथा 'नागेन्द्र' शब्द के प्रयोग में शुक्लवर्ण के वर्णन से 'इन्द्रवाहन' की प्रतीति सम्भव होने से किसी एक का कथन ही पर्याप्त है।[8] अतः यह जो दोनों का कथन है, वह सदोष है।

विशेषणविशेष्य विषयक पौनरुक्त्य के परिहार में महिम का मत है कि जहाँ विशेषण द्वारा विशेष्य की विशेष प्रतीति अभीष्ट हो, वहाँ दोष नहीं होता।[9] यथा–

'तव प्रसादात् कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा।
कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये।।'

यहाँ 'पिनाकपाणि' विशेषण से केवल संज्ञी 'शिव' का ही कथन अपेक्षित नहीं है, अपितु उसकी सर्वोत्कृष्टता भी अपेक्षित है। अतः दोनों का उपादान होने से भी दोष नहीं होगा।[10] पुनरुक्ति के अनेक नियमों का महिमभट्ट ने संग्रहश्लोकों में प्रतिपादन किया है। यथा–

'समान विभक्ति वाले पदार्थ का धर्म एक पदार्थ के लिए प्रयुक्त करने पर सभी में अन्वित हो जाता है। इसीलिए पर्यायवाची शब्दों द्वारा उस धर्म का पुनः–पुनः कथन पुनरुक्त दोष युक्त होता है।[11] जहाँ प्रयुक्त पदों में से ही किसी एक पद द्वारा किसी अर्थ की प्रतीति हो रही हो, वहाँ उसके लिए अन्य शब्द का प्रयोग करने से 'पुनरुक्ति' होती है।[12]

'पुनरुक्ति' का अत्यन्त विस्तृत विवेचन करने के उपरान्त महिमभट्ट पुनरुक्ति के प्रकारों का संकेत मात्र करते हुए कहते हैं कि कूड़े के ढेर को पूर्ण रूप से कौन व्यक्त कर सकता है।[13]

उपसंहार

इस विवेचन से ज्ञात होता है कि महिमभट्ट ने प्रकृति, प्रत्ययादिगत पुनरुक्ति के साथ–साथ ही विशेषण–विशेष्यों एवं अलङ्कार आदि में प्राप्त पुनरुक्ति का भी पर्याप्त विवेचन किया है। इसके साथ ही समासादिगत पुनरुक्ति का विवेचन भी महिमभट्ट करते हैं। भले ही पुनरुक्ति पर सभी प्राचीन आचार्यों ने विचार किया हो, लेकिन इतना व्यापक चिन्तन अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं होता।

संदर्भ

1. 'गुणा विपर्ययादेषां माधुर्योदार्यलक्षणाः।' नाट्यशास्त्र, 16/95
2. व्यक्तिविवेक, महिमभट्टः द्वितीय विमर्श, पृ०333
3. व्यक्तिविवेक, महिमभट्टः द्वितीय विमर्श, पृ०334
4. वही, 'तच्चानेक प्रकारकं सम्भवति।
5. प्रकृतिप्रत्ययोभयपदवाक्यविषयत्वात्।' (द्वितीय विमर्श, पृ०–341)
6. अष्टाध्यायी, पाणिनिः 'केशाश्वाभ्यां यञ्छौ।' (4/2/48)
7. व्यक्तिविवेक, महिमभट्टः द्वितीय विमर्श, संस्कृत टीका, पृ०–342
8. वही, द्वितीय विमर्श, पृ०–345
9. वही, द्वितीय विमर्श, संस्कृत टीका, पृ०345
10. वही, 'यत्र तद्विशेषप्रतिपत्तिर्न तत्र पौनरुक्त्यम्'। (द्वितीय विमर्श, पृ०345)
11. वही, द्वितीय विमर्श, संस्कृत टीका, पृ०346
12. वही, 'धर्मस्तुल्यविभक्तीनामेकस्याप्युदितोऽखिलान्।
13. तानन्वेतीति पर्यायैस्तदुक्ति पौनरुक्त्यकृत्।।' (द्वितीय विमर्श, संग्रहश्लोक, 45)
14. वही, द्वितीय विमर्श, संग्रहश्लोक, 58
15. वही, 'पुनरुक्तिप्रकाराणामिति दिङ्मात्रमीरितम्।
16. विवेक्तुं को हि कात्स्न्र्येन शक्नोत्यवकरोत्करम्।।' (द्वितीय विमर्श, संग्रहश्लोक 69)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायी, पाणिनिः सं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलालकपूर ट्रस्ट, सोनीपत, 1992
2. नाट्यशास्त्रम्, भरत (अभिनवभारती सहित) : सं०आर०एस० नागर, (खण्ड 2, 3), परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1984
3. व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट : व्या० रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2005